



# On Eating

A Multilingual Journal of Food and Eating

Share

Like

## Bhanukul's Kitchen Raga-Hindi



भानुकुल का रसोई राग

कलापिनी कोमकली



एक जानी-मानी कहावत है- सुबह काशी, शामे अवध और शबे मालवा. यह वह भू-भाग है जहाँ की आबो-हवा प्रदेश के दूसरे भागों की तुलना में शीतल, संतुलित और रम्य है. तो मेरा जन्म ऐसे 'मालवा' में हुआ जहाँ की काली माटी भरपूर उपजाऊ है साथ में डग-डग पर पानी भी.

मैं जिस परिवेश में जन्मी और पली बड़ी वहाँ चहुँओर स्वर गुंजायमान थे. जिस तरह संगीत के घरानों की खूबियों को सराहा जाता रहा, उसी तरह अलग-अलग संस्कृति के खानपान का भी ऐसा अनूठा संगम रहा, कि क्या कहा जाए..!!

(बाबा यानी) मेरे पिता पं. कुमार गंधर्व कर्नाटक में जन्मे थे और उनकी संगीत शिक्षा मुंबई में हुई थी, अतः उनके खानपान की आदतों में कन्नड़ और मराठी व्यंजन मुख्य रहे.

भानुमतिजी, (बड़ी माँ) मूलतः सारस्वत यानी तटीय कर्नाटक की थी. लेकिन जन्म करांची में हुआ था और शिक्षा-दीक्षा मुंबई में हुई थी, तो घर में कुछ सारस्वत प्रकार और कुछ सिन्ध प्रान्त के व्यंजन आये थे.

भानुमतिजी के निधन के उपरान्त कुमारजी का विवाह वसुन्धराजी (मेरी माँ) से हुआ. एक ओर तो उनकी पैदाइश मराठी परिवार में हुई और शुरुआत की पढ़ाई-लिखाई कलकत्ता में हुई जिसके बाद वे संगीत सीखने मुंबई आ गयी. तो उनके पसंदीदा व्यंजनों में मराठी पाककृतियों के साथ-साथ बंगाल का छौंक और विशिष्ट पाककृतियाँ भी रहीं.

कुमारजी, भानुमतिजी और वसुन्धराजी अपने-अपने जीवन के पड़ाव पार करते हुए अंततः 'मालवा' देवास आकर बसे और सच कहूँ तो यही के हो गये.

क्योंकि आई, बाबा की तबीयत का ख्याल रखते हुए ही ज़्यादातर व्यंजन बनाती थी. एक संगीतकार का घर होने के कारण भोजन में खटाई, मिर्च, तेल की अधिकता कभी नहीं रही. जिन खट्टी चीज़ों से आवाज़ बैठने का डर हो जैसे- इमली, निंबू, जामफल, खट्टे अंगूर आदि का परहेज़ रखा जाता, लेकिन हाँ.. तरह-तरह के अचार-मुरब्बे ज़रूर बनते थे. ख़ूब तली हुई चीज़ें खाने-खिलाने का शौक स्वाभाविक ही कम था. ज़्यादातर मराठी-कर्नाटक पद्धति में घुला संतुलित भोजन ही बनता था.

हमारे घर में 'पाककला' प्राविण्य (perfection) को पाने की दौड़ तो नहीं थी, पर हाँ, जो भी व्यंजन बनते वे बेहद सुरुचिपूर्ण और मंझे हाथों से बनते.



जहाँ तक मेरी यादाश्त पीछे जाती है, मेरा 'पाककला' के साथ साबका तभी से पड़ा जब मैं मुश्किल से 3-4 साल की रही होऊँगी.

मुझे सम्भालने के लिये जो दाई माँ थी उनका नाम था नूरबानो यानी हमारी नूर अम्मा ! वे बेहद साफ़-सुथरी, गोरी चिट्ठी थी. सफ़ेद-झक सलवार-कमीज़ के साथ सरढ़कता मलमल का दुपट्टा ओढ़ती थी, और हाथ में होती थी हज़ से लाई तसबीह (जपमाला) ! अपनी कांपती आवाज़ में वे तरह-तरह से मेरा मन रमाने की जुगत भिड़ाती रहती.

आई ने रसोईघर से संबंधित खिलौने जिसे मराठी में 'भातुकली' कहते हैं, लाकर दिये थे. जिसमें तमाम तरह-तरह के खाना बनाने के बर्तन, जैसे थाली, कटोरी, खोचा, पलटा, तवा, चूल्हा, गैस, चाय-दूध के बर्तन, चिमटा, संडसी, से लेकर कप-प्लेट, टेबल-कुर्सी... सब... सब... था. और मैं नूर अम्मा के साथ इन बर्तनों में झूठमूठ का खाना बनाती. अम्मा के तमाम झुर्रियों से भरे हाथ और कांपती आवाज़ आज भी ज़ेहन में है.

वो कहती...

हाँ, अब कढ़ाई में तेल डालो... रुको उसे गरम होने दो... हाँ, अब जीरा डालो... अब... ये... अब... वो... और इस

तरह से मेरी training शुरू हुई, यानी नूर अम्मा मेरी पाककला की पहली गुरु बनीं.

घर में हमेशा सात्विक, रुचिपूर्ण और शाकाहारी भोजन बनता आया है. आई के हाथों से बनी सुस्वादु 'आमटी' (विशिष्ट तरह की खट्टी-मीठी दाल) और घड़ी-ची पोळी (दूसरे शब्दों में बिना घी-तेल का पराठा, जो महाराष्ट्रियन भोजन की विशिष्टता है) का कोई तोड़ आज तक तो नहीं मिल पाया है.

घर में बाबा-आई, बड़ा भाई मुकुल दादा और मेरे अलावा एक महत्वपूर्ण व्यक्ति था और वह था- कण्णा मामा यानी कृष्णन नंबियार !! जो मूलतः केरल का था और भानुमतिजी के साथ देवास आया था. वह घर का सबसे सम्माननीय बुजुर्ग था जिसे तरह-तरह के कामों में महारथ हासिल थी. वह आई के साथ हमेशा रसोई में भी हाथ बंटाता था और उसकी कुछ 'पाककृतियाँ' अब हमारी अभिन्न 'धरोहर' में गिनी जाती है.



एक कहावत है- 'गवैया सो खवैया'

लेकिन सच कहूँ तो बाबा आई का मामला बिलकुल उल्टा था. वे हमेशा बेहद नपा-तुला शाकाहारी खाना खाते थे. हाँ उन्हें दूसरों को खिलाने का बेहद शौक था.

बहुत पुरानी (1947 से) एक चोपड़ी (डायरी) थी जिसमें बेहद खास पाककृतियाँ लिखी थी. इस चोपड़ी में सिंध, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पंजाब, आदि प्रांतों की चुनिंदा पाककृतियाँ समय-समय पर जुड़ती चली गयी.

जिस तरह संगीत के विद्यार्थियों के लिये 'भातखंडे संगीत पद्धति' का महत्व है पाककला के संदर्भ में मेरे लिये यह चोपड़ी किसी 'गीता' से कम नहीं थी. धीरे-धीरे इस एक चोपड़ी की कई चोपड़ियाँ बनती चली गयी और अलग-अलग प्रांतों के अलावा अलग-अलग संस्कृतियों के व्यंजनों की शिरकत होती गयी, जो आज भी जारी है.

खाने की मेज़ पर थाली में भोजन किस तरह और कैसा परोसा जाये इसका भी एक अलिखित शास्त्र है. और उसी प्रकार से थाली सजती है.

एक बात खास थी, कि घर में जो भी व्यंजन बनते वे सभी के लिये एक समान होते और हम बच्चों को भी थाली में परोसा गया हर पदार्थ खाना अनिवार्य होता था. इसमें कोई रियायत नहीं थी.

करेला हो, कटहल हो, मद्रासी रसम हो, सारस्वत तमळी हो, बेलगांव की पचड़ी-हुग्गी हो, भाकरी (ज्वार-बाजरा की रोटी) किक्कोड़े (करटोली) हो, बंगाल का बैंगुन भाजा हो... सब खाना ही पड़ता था. उससे एक बढ़िया बात यह हुई की हमें सब चीज़ें चखने की आदत बनती गयी.

मुझे याद है, बचपन में स्कूल के टिफिन में मैं करेले की सब्जी ले जाने का आग्रह करती थी.

वसुंधरा ताई शादी के बाद 1963 में जब मुंबई से देवास आयी तो अपने साथ इडली की दालें इत्यादि पीसने वाला पत्थर का रगड़ा लेती आयी. उन्हें दक्षिण भारतीय व्यंजनों से बेहद लगाव था. देवास छोटा शहर था, पता नहीं दालें आदि पीसने की व्यवस्था हो न हो. (तब घरों में Mixer-Grinder नहीं होते थे) तो वे रगड़ा ले आयी और बरसों तक मुझे याद है की उसी पर काम चलता रहा.



घर में लंबे समय तक गैस का उपयोग मुख्य रूप से केवल चाय-कॉफी बनाने के लिये ही होता था. मूल खाना तो कोयले की सिगड़ी (अंगीठी) पर ही बनता था. आई सुबह का नाश्ता होने पर सिगड़ी (अंगीठी) जलाती और देर दोपहर में गरमागरम घड़ी की रोटी (चपाती) या कभी-कभी 'कडले' (मिट्टी का बारीक छेद वाला तवा) पर फुल्के बनाकर परोसती. खासकर बाबा जब कार्यक्रम करके कई दिनों बाद घर लौटते तो थके होते थे, उन्हें आमटी-भात (दाल-चाँवल) के साथ सब्जी-कोशिंबिर और गरमागरम 'घड़ी-ची पोळी' परोसकर वह तृप्त कर

देती थी.

'मितव्ययता' का अर्थ उन्होंने बखूबी समझा था. उन्होंने कभी भी पहनावे में, रहनसहन में, भोजनादि के शौक में अतिरिक्त दिखावा या 'अतिरेक' नहीं किया. उनके व्यक्तित्व में सगुण सौंदर्य की रसिकता भी थी और निर्गुण का भाव भी.

सिंगड़ी (अंगीठी) की बात चली है तो एक और खास बात बताती हूँ- तब, यानी 60-70 के दशक में गैस जलाने के लिये Lighter नहीं होता था. एक छोटी सी घासलेट (केरोसीन) से जलने वाली चिमनी 24 घंटे रसोईघर के कोने में जलती रहती थी. ब्रुकबॉन्ड चाय के खाली हो चुके कागज़ के डिब्बे की कण्णामामा बैठे-बैठे लंबी पट्टियाँ काट देता था, जिनका उपयोग हरबार माचिस की तीलियों के बजाय, उस छोटी सी चिमनी से सुलगाकर गैस जलाने के लिये किया जाता था.

हमारे यहाँ एक घट्टी भी थी जिसे "घर-काम" करने वाली अजुध्या बाई से आई ने पीली मिट्टी से लिपवाकर 'पाल' (घट्टी के चारों ओर बनी ऐसी कोर जिससे पीसा हुआ आटा ज़मीन पर न गिरे) तैयार करवाली थी. बीचों-बीच लकड़ी की एक 'मकड़ी' होती थी जिसके सहारे उसे घुमाया-पीसा जा सके. उसी घट्टी पर (महाराष्ट्रियन व्यंजन) 'चकली' का आटा पीसा जाता था. और सच कहूँ... ऐसी खस्ता चकली बनती की.....



60-70 के दशक में भी देवास छोटा शहर था. आज की तरह बारहों महीने सभी प्रकार की तरकारियों का मिलना दुर्लभ होता था. मुझे याद है... ठंड के मौसम में जब टमाटर बहुतायत आते थे, आई और कण्णा मामा चौक में बड़ी अंगीठी पर टोमॅटो सॉस हम बच्चों के लिये बनाते, हद तो तब हो गयी जब बाबा के आग्रह पर उसने पूरे 100 औषधियों से युक्त च्यवनप्राश को घर पर बना डाला!! और वह भी पूरे तीन दिन खपकर!!

खाने की मेज पर हमेशा ही कोई न कोई मेहमान या उसी समय 'पधारने' वाला 'आगंतुक' रहता ही था, जिसे हमारी आई ने कभी अन्यथा नहीं लिया. बाबा बहुत सलीके से धीरे-धीरे, स्वाद लेते हुए... वाह...! वाह...! कहते हुए भोजन करते और पसंद आई छोटी से छोटी चीज़ भी ख़ूब तारीफ़ पाती !

एक बार की बात है- हमारे घर के आम के पेड़ पर कैरी नहीं आयी थी और एकाएक एक दिन कहीं से एक कैरी टपकी मिली. उस एक अकेली कैरी को बाबा ने धारवाले चाकू से तराशा, लंबी-लंबी चक्तियाँ काटी, नमक-लालमिर्च लगाई और खाने की मेज पर बैठे सभी लोगों को परोसा! वह भी आहाहा... वाह... के साथ. उनका यह छोटी से छोटी चीज़ को सराहने (appreciation) का स्वभाव बहुत लाजवाब था.

'भानुकुल' के दरवाजे स्वागत के लिये हमेशा खुले रहे हैं. देवास में बाबा के घनिष्ठ मित्र साहित्यिक-पत्रकार राहुल बारपुते, चित्रकार गुरुजी चिंचालकर, चित्रकार सज्जातज्ञ चंदू नाफड़े, नाटककार बाबा डीके, कवि-साहित्यिक अशोक वाजपेयी, लेखक-नाटककार पु.ल. देशपांडे, गायक वसंतराव देशपांडे, पद्मकुमार मंत्री, पत्रकार प्रभाष जोशी, रामभैया दाते परिवार के सदस्यों से लेकर देश के विभिन्न भागों में रहने वाले प्रियजन और तमाम कलाकारों का आना जाना हमेशा लगा रहता था.

मेरी स्मृति में कभी पं. रविशंकरजी और उ. अल्लारखा खांसाहब आये हैं, उन्हें कार्यक्रम के बाद अल-सुबह आगे निकलना है... तो देर रात मेज पर आई भोजन परोस रही है. तो कभी पं. भीमसेनजी देर रात को बाबा के कमरे में गा रहे हैं, उपरान्त रात 2 बजे भोजन! बड़ोदा के आर्किटेक्ट माधव आचवल और शिल्पकार र.कृ. फड़के कई-कई दिनों तक कुमारजी से चर्चरत हैं, तो नागपूर के कवि अनिल (आत्माराम रावजी देशपांडे) भी पन्द्रह दिन यही ठहरे हैं, तो कभी कव्वाल शंकर शंभू भी आये हुए हैं, पु.ल. और वसंतरावजी देशपांडे बाबा के कमरे में ही ठीया जमाये हैं.

एक बात ख़ास, की इनमें से कभी किसी ने किसी चीज़ की अतिरिक्त फरमाइश नहीं की. बाबा के जन्मदिन पर आने वाले मित्र परिवारों के लिये घर पर ही चक्का बनाकर श्रीखंड बनता. मेरे और मुकुलदादा के जन्मदिन पर भी हमारी पसंदीदा पुरणपोळी और जलेबी बनती.

बाबा का कार्यक्रमों के लिये लगातार देश के सुदूर शहरों में आना-जाना चलता रहता. वे ज़्यादातर ट्रेन से सफ़र करते. First Class के डिब्बे में (उन दिनों ट्रेन में A.C. कंपार्टमेंट नहीं होते थे) निचली बर्थ बाबा के लिये आरक्षित होती. दोनों तानपूरे बीच की चाय टेबल के दोनों ओर एक-एक खड़े करके बांध दिये जाते या कई बार तो ऊपरी बर्थ पर लिटा दिये जाते.

उन दिनों आवाज़ का ख्याल रखते हुए घर से ही प्रवास में लगने वाला पानी का थर्मस और खाने का तीन डिब्बों वाला टिफ़िन साथ दिया जाता।

दो वक्त का भोजन जिसमें आलू की सब्जी, चटनी, दूध में आटा गूँथकर बनायी नरम चपाती (दशमी), बिनाकटी सलाद, नमक, कुछ मीठा और सबसे खास बेलगांव का दही चाँवल जिसे 'बुत्ती' कहा जाता है वह होता था। बाबा भी प्रवास में बड़े चाव से भोजन का आनंद लेते। कभी अकेले तो कभी आई भी साथ रहती। कभी संगतकार भी उसी ट्रेन में जुड़ जाते। उस First class के डिब्बे में वो टिफ़िन का (घर का) खाना आज भी मुँह में पानी ला देता है। परहेज को ध्यान में रखते हुए कभी भी बाबा-आई सफ़र के दौरान यहाँ-वहाँ कुछ खाते नहीं थे। कुछ नया प्रकार पसंद आया हो तो घर आकर बताते और आई दिमाग दौड़ाकर हूबहू बनाने का प्रयत्न करती।

एक वाक्या याद आ रहा है-

पारिवारिक मित्र एकनाथ कामथजी और उनकी धर्मपत्नी निरुपमा से मिलकर बाबा बंगलोर से लौटे थे।

वे आई से बोले- "निरुपमा ने मुझे मक्खन सी मुलायम मूँग की ईडली खिलायी।" उन दिनों फोन करना उतना सहज नहीं था, बल्कि उसकी आदत भी नहीं थी, और न ही मोबाइल का जमाना जिसमें youtube पर पाककृतियों की भरमार हो। तो आई ने स्व-विवेक से जोड़-घटाव कर के मूँग की मुलायम ईडली बना ही दी।

मज़े की बात यह की आई यह सब उसका खुद का रियाज़-गाना-बाबा के साथ Special Thematic Concerts की तैयारी, बंदिशों का Notation करके करती। आज मैं यह सब सोचकर अचंभित हूँ !!

घर में शिष्य मंडली का आना-जाना सदैव बना रहता। वे सब घर के सदस्य ही तो थे। रसोईघर में खाना बनाते-बनाते वह शिष्यों का रियाज़ सुनती। कई बार खाने की मेज़ (Dining Table) पर ही बाबा बैठे-बैठे गुनगुनाते रहते, आई को आवाज़ लगाते... "सुनो यह देखो कितनी सुंदर बंदिश है!!"

'भानुकुल', यह घर चारों ओर से घने छायादार पेड़ों से घिरा है। तरह-तरह के फल-फूल के वृक्ष-पौधों से आच्छादित है। उसमें बाँस (बांबू) की वह प्रजाती भी है जिसे खाने में इस्तेमाल किया जाता है। आई के विशेष आग्रह पर इसे बाबा ने लगाया था।

1984-85 के दौरान भारत में बांबू खिला था। यहाँ बताना मौजू होगा कि बांबू में 40 साल में केवल एक बार ही फूल खिलते हैं; और जो बीज बनते हैं उन्हें 'बाँस के चाँवल' कहा जाता है। यह बिरले चाँवल औषधी गुणयुक्त होते हैं। तो बाबा को किसी ने 'बांबू के चाँवल' लाकर दिये। स्वभाव के अनुसार उन्होंने निकट के परिचितों को बुला-बुलाकर खीर प्राशन करवायी। और आई ने सावन-भादौ के महीने में जमीन से फूटने वाले ताजे बाँस की शानदार तरकारी बनाने का तरीका खोजा और ताजे नारियल के मसाले में बनने वाली 'भानुकुल स्पेशल' तरकारी इज़ाद की।



जब बारिश की झड़ी लगातार कुछ दिनों तक जारी रहती तो एक बर्तन चौक में रख दिया जाता और आसमान से बरसते झमाझम की बूंदों को लेकर उसकी चाय बनायी जाती... बहुत निराला स्वाद होता था उस चाय का !!

जैसे-जैसे मैंने चौके में रुचि लेना शुरू किया, आई धीरे-धीरे मुझ पर चीज़ें सौंपती गईं. फिर भी उसके हाथ की बनी रोटी, आमटी, पुरणपोळी, चकली, सोलकढ़ी, तमाम अचार आदि आदि के बारे में क्या कहूँ?... क्या जादू करती थी वो... वाह ! उसके हाथों से तो स्वाद झरता था. असल में सामग्री के साथ हम सबके लिये स्नेह का खास छौंक जो डलता था !

अब समय बहुत बदल गया है. जिस तरह बहुत से राग और उनकी बंदिशों को रुबरु गुरुमुख से समझना रह गया इसका मलाल है, उसी तरह बहुत कुछ बातें या यों कहें 'मक्खी' जानना रह गयी. अब अपने दम पर राग और बंदिशों को जानना समझना है.

कई प्रकार के देशी विदेशी व्यंजनों की जाजम बिछ गयी है... घर की रसोई किसी Laboratory से कम नहीं. मुझे उन्हें आजमाना बेहद पसंद है. पिछले कुछ समय से मेरे साथ भतीजे- भुवनेश की पत्नी- उत्तरा साथ देने लगी है. उसने आई के धज तले कुछ-कुछ व्यंजन बनाने में महारथ हासिल कर ली है.

अब जब कुमारजी को हमारे बीच से गये 30 से अधिक वर्ष बीत चुके हैं, वसुंधराजी को भी गये 6 वर्ष... 'भानुकुल' में इन स्वादिष्ट बंदिशों का संगीत तो गूँजता रहता ही है साथ में मालवी भोजन का तड़का भी काफ़ी हद तक जुड़ गया है.

पहले मालवी स्वाद के व्यंजन 'दाल बाफले' 'चूरमा' आदि यदा-कदा बनते थे. आज हम पर 'मालवा प्रभाव' के कारण कह लीजिये इनके आरोह-अवरोह नियमित गुनगुनाये जाते हैं.

माना कि हमारी जड़ें कर्नाटक, महाराष्ट्र, सिंध, बंगाल से है लेकिन भई हम तो मालवी हैं.





Like

Share



सुनील जैन

January 30, 2022, 1:41 pm

Edit | Reply

आप भी सिद्धस्त है पाक करता है क्योंकि आपके हाथ का बैगन की सब्जी जो आपने मुझे  
बुझाकर खिलाई थी उसका स्वाद आज भी मन को प्रसन्न करता कर देता है और यह स्वाद आज

भी जस का तस बना हुआ है |

आप के हाथ का बैगन का भरता और कद्दू की सब्जी कैसे भूल सकते है जो कि हमारी खेत  
पार्टी की विशेष डिश होती है।

आपका गायन जैसे श्रोताओ को मंत्रमुग्ध कर देता है यकीनन आपका पाकशास्त्र ज्ञान और  
उसको करीने से बनाने का जज़्बा भी एक अलग ही स्वाद देता है।



शैलेन्द्र जैन

January 30, 2022, 2:45 pm

Edit Reply

वहा बहुत ही सुंदर वर्णन बहुत बहुत बढ़ाई



Dr Brij Bhan Vyas

January 30, 2022, 3:18 pm

Edit Reply

अद्भुत असाधारण अलौकिक आनंद दायक लेख  
अगले लेख के लिए प्रतीक्षारत.....



MANISH JAIN

January 30, 2022, 6:10 pm

Edit Reply

I am not able to see my previous comments .....

Disclaimer

© 2021

- The views expressed through this site are those of the individual authors writing in their individual capacities only and not those of the owners and/or editors of this website. All liability with respect to actions taken or not taken based on the contents of this site are hereby expressly disclaimed. The content on this posting is provided "as is"; no representations are made that the content is error-free.

The visitor/reader/contributor of this website acknowledges and agrees that when he/she reads or posts content on this website or views content provided by others, they are doing so at their own discretion and risk, including any reliance on the accuracy or completeness of that content. The visitor/contributor further acknowledges and agrees that the views expressed by them in their content do not necessarily reflect the views of oneating.in, and we do not support or endorse any user content. The visitor/contributor acknowledges that oneating.in has no obligation to pre-screen, monitor, review, or edit any content posted by the visitor/contributor and other users of this Site.

No content/artwork/image used in this site may be reproduced in any form without obtaining explicit prior permission from the owners of oneating.in.